

---

## इकाई 12 नाटक के अंग

---

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 नाटक के अंग

12.2.1 नान्दी

12.2.2 प्रस्तावना

12.2.3 इतिवृत्त : आधिकारिक, प्रासंगिक

12.2.4 जनान्तिक

12.2.5 अपवारित

12.2.6 सूत्रधार

12.2.7 विदूषक

12.2.8 कञ्चुकी

12.2.9 पताकास्थानक

12.2.10 आकाशभाषित

12.2.11 भरतवाक्य

12.3 सारांश

12.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.5 अभ्यास प्रश्न

---

### 12.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- साहित्यदर्पण के अनुसार नाटक के अंगों का अध्ययन करेंगे।
- नाटक की सूक्ष्म विशेषताओं एवं आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- नाटक में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावलियों एवं उनके अर्थों का भी ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- संस्कृत के अनेक नाटक हैं उनका नाट्यप्रयोग में नाटक के अंगों का कैसे उपयोग किया जाता है इससे भी परिचित होंगे।

---

### 12.1 प्रस्तावना

---

दृश्य काव्य ऐसे काव्य होते हैं जिनका समाज के मनोरंजन या विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिए अभिनय किया जाता है। दृश्यकाव्य जनप्रिय होता है इसीलिए 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' कहा जाता है। दृश्य काव्य रूपक एवं उपरूपक के भेद से दो प्रकार के होते हैं। आचार्यों ने रूपक के नाटक, प्रकरण, भाण आदि दस भेद स्वीकार किये हैं तथा उपरूपकों के भी 18

भेद माने हैं। रूपकों का अभिनय करते समय जनान्तिक, अपवारित, सूत्रधार, पताकास्थानक, आकाशभाषित आदि शब्दों का प्रयोग होता है। प्रस्तुत इकाई में आप इन्हीं के लक्षणों एवं उदाहरणों का अध्ययन करेंगे।

## 12.2 नाटक के अंग

जिस प्रकार मानव का शरीर हृदय, मस्तिष्क आदि अंगों का योग है और उन सभी का उनकी स्वयं की कार्यशैलियों के आधार पर अपना-अपना महत्वपूर्ण स्थान भी है। मानव शरीर के इन सभी अंगों में से किसी एक भी अंग के न होने पर मनुष्य का शरीर पूर्णता को प्राप्त नहीं होता है। उसी प्रकार साहित्य विधा में नाटक का भी अपना शरीर होता है जिसमें नान्दी, प्रस्तावना आदि अनेक अंग होते हैं। नाटक के इन सभी अंगों में से यदि किसी अंग को अलग कर दिया जाये तो नाटक अपना अस्तित्व खो देता है। इसलिए नाटक तभी नाटक कहलाने का अधिकारी है जब वह अपने नान्दी आदि सभी अंगों से संयुक्त होता है। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में नाटक के जो अंग माने हैं उनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार से किया जा सकता है –

### 12.2.1 नान्दी

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने नाटक के लिए रंगशाला आदि का निर्माण कर लेने के पश्चात् नाटक का सबसे प्रथम अंग नान्दी को माना है। नान्दी शब्द की व्युत्पत्ति ‘नन्द+षञ्+डीष्’ से होती है जिसका अर्थ होता है—‘नन्दन्ति देवा अत्र’ अर्थात् किसी भी हर्ष या खुशी में, विशेषकर नाटक के सन्दर्भ में नाटक का आरम्भिक मंगलाचरण जिसमें, देवताओं की आराधना या प्रार्थना की जाती है, नान्दी कहलाता है। यह नान्दी नटों (नाटक के सभी पात्रों) के द्वारा की जाती है और यह नमस्कारात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक और आशीर्वादात्मक से तीन प्रकार की होती है। आचार्य विश्वनाथ ने नान्दी का लक्षण करते हुए कहा है कि –

तस्याः स्वरूपमाह –

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।

देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।।24।।

माङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी।

पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत।।25।।

अर्थात् आशीर्वादात्मक वचनों से संयुक्त देवता, ब्राह्मण और राजा आदि की स्तुति जिससे की जाती है, उसे नान्दी की संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है। इस नान्दी में बारह या आठ पदों का योग होता है और इन पदों में सुबन्त, तिडन्त और श्लोक के चतुर्थांश (पाद) का भी

ग्रहण किया जाता है। साथ ही इस नान्दी में मंगलसूचक वस्तुओं, शंख, चन्द्र, चक्रवाक और कुमुद आदि का प्रयोग किया जाता है।

नान्दी को उसके अष्टपदा और द्वादशपदा से समझने से पहले नान्दी को एक अन्य उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं जहाँ नान्दी का लक्षण स्पष्ट घटित होता है।

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी

यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः।

अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते

स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायस्तु वः।।

वेदान्त में जिन्हें पृथ्वी और आकाश में व्याप्त एक पुरुष कहा गया है, ईश्वर शब्द जिनमें यथार्थ रूप में अनुगत है और जिनको प्राणादि नियमन करने वाले मुमुक्षु पुरुष हृदय के भीतर ढूँढते हैं, स्थिर योग से सुलभ वे भगवान् शंकर हमारी रक्षा करें।

इस पूर्वोक्त उदाहरण में न तो अष्टपद है, न द्वादश पद है और न ही मंगल वस्तुओं का ही प्रयोग किया गया है और न ही इसमें स्तुति ही की गयी है, इसलिए यहाँ नान्दी का लक्षण घटित नहीं हो रहा है। अतः यहाँ नान्दी नहीं है। यदि नान्दी नहीं है तब क्या है? पूर्वरंग का रङ्गद्वार नामक अंग है, क्योंकि रंगद्वार में सर्वप्रथम कायिक, वाचिक और सात्त्विक अभिनय होता है और यहाँ कायिक अभिनय का ही बोध हो रहा है। साथ ही यहाँ नटों के द्वारा नटों की अभिनय की वेशभूषा को भी धारण कर लिया गया है जो कि नान्दी में नहीं होती है। अतः यहाँ नान्दी नहीं है, बल्कि रङ्गद्वार है।

आचार्य विश्वनाथ कहते हैं कि नान्दीपाठ करने से पूर्व पूर्वरंग होना चाहिए। अब यह पूर्वरंग क्या है? इसको बताते हुए आचार्य ने कहा है –

तत्र पूर्वं पूर्वरङ्गः सभापूजा ततः परम्।

कथनं कविसंज्ञादेर्नाटकस्याप्यथामुखम्।।21।।

यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये।

कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते।।22।।

प्रत्याहारादिकान्यङ्गान्यस्य भूयांसि यद्यपि।

तथाऽप्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये।।23।।

नाटक के आरम्भ में पूर्वरंग होना चाहिए। वैसे पूर्वरंग का सामान्य अर्थ सभापूजन होता है किन्तु पूर्वरंग को शब्दशः देखा जाये तो पूर्वरंग दो शब्दों का योग है – पूर्व + रंग। पूर्व का

अभिप्राय होता है— नायक आदि के आरम्भ में तथा रंग का अभिप्राय होता है — रंगमण्डप या नाट्यशाला में। इस तरह जब पूर्व और रंग को एक समास करके पढ़ा जाता है तब इसका अर्थ होता है— नाट्यशाला में नाटक आदि के विघ्नों की शान्ति के लिए कुशीलवा (पारिपार्श्विक लोग) जो कुछ प्रयोग करते हैं वह पूर्वरंग कहलाता है। इस पूर्वरंग के प्रत्याहारादि बहुत से अंग हैं परन्तु रंगमंच पर प्रस्तुति के समय किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो इसके लिए नान्दीपाठ आवश्यक होता है।

नान्दी को उसके स्पष्ट लक्षणों के घटित होने के आधार पर स्पष्ट करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने उदाहरण देते हुए कहा है —

### 1 अष्टपदा नान्दी —

अष्टपदा यथा अनर्घराघवे— 'निष्प्रत्यूहम्' इत्यादि।

निष्प्रत्यूहपास्महे भगवतः कौमोदकीलक्ष्मणः

कोकप्रीतिचकोरपारणपटुज्योतिष्मती लोचने।

याभ्यामर्धविवोधमुग्धमधुरश्रीरर्धनिद्रायितो

नाभीपल्लपुण्डरीकमुकुलः कम्बोः सपत्नीकृतः।।

विरमति महाकल्पे नाभिपथैकनिकेतन—

स्त्रिभुवनपुरः शिल्पी यस्य प्रतिक्षणमात्मानः।

किमधिकारिणा कीदृक्कस्य व्यवस्थितिरित्यसा—

मुदरमविशद् द्रष्टुं तस्मै जगन्निधये नमः।। मुरारी, अनर्घराघवम्.1.1

(विघ्नशान्तिके लिए कौमोदकी नामक गदा से सुशोभित भगवान् विष्णु के उन नयनों की उपासना करते हैं जिनमें कोक की प्रीति तथा चकोर के व्रतान्त भोजन में उपयुक्त सूर्य-चन्द्रात्मक ज्योति विद्यमान है, जिन सूर्यचन्द्रात्मक नयनों के सम्पर्क से आधा विकसित तथा आधा मुकुलित भगवान् का नाभि कमल शङ्ख की समता को करा दिया जाता है।)

इस श्लोक में नान्दी के शङ्ख, गदा, कमल आदि लक्षण पूर्णतः घटित हो रहे हैं। साथ ही इसमें 'निष्प्रत्यूहपास्महे' से लेकर 'जगन्निधये नमः' तक दोनों श्लोकों को मिलाकर आठ पदों का भी प्रयोग किया गया है। अतः यहाँ अष्टपदा नान्दी है।

### 2 द्वादशपदा नान्दी —

द्वादशपदा यथा मम तातपादानां पुष्पमालायाम्—

शिरसि धृतसुरापगे स्मरारावरुणमुखेन्दुरुचिर्गिरीन्द्रपुत्री।

अथ चरणयुगानते स्वकान्ते स्मितसरसा भवतोऽस्तु भूतिहेतुः ॥ पुष्पमालायाम् ।

गिरीन्द्रपुत्री यानि हिमालय की पुत्री अर्थात् गङ्गा को शिर पर रखने से सपत्नी (सौत) से विद्वेष के कारण पार्वती का मुख रक्त (लाल) हो गया और फिर जब भगवान् शंकर के द्वारा उनकी प्रार्थना की गयी तब प्रसन्न हुई। इस तरह वे पार्वती हमारे लिए भी कल्याणकारी हों।

इसमें नान्दी के लक्षण पूर्णतः घटित हो रहे हैं। इसमें नटों आदि के द्वारा प्रार्थना की जा रही है, इसमें चन्द्रमा आदि का भी वर्णन देखने को मिलता है। इसमें पार्वती से कल्याण के लिए प्रार्थना भी की गयी है। इसके साथ ही इस श्लोक के पदों पर भी दृष्टिपात करें तो इसमें शिरसि आदि द्वादश ही पद हैं। अतः यहाँ द्वादशपदा नान्दी है।

### 12.2.2 प्रस्तावना

नाटक में प्रस्तावना का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। प्रस्तावना को आमुख नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। नाटक में जब सूत्रधार नटी या पारिपार्श्विक से अपने कार्य के सम्बन्ध में वार्तालाप करता है, किन्तु उक्ति की विशेषता के कारण नाट्यकथा की सूचना भी प्राप्त हो जाती है, वह प्रस्तावना या आमुख कहलाती है। यह प्रस्तावना या आमुख भारती वृत्ति के चार अंगों में प्ररोचना, वीथी और प्रहसन के बाद चतुर्थ स्थान पर स्थापित की जाती है। आचार्य विश्वनाथ ने प्रस्तावना के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए कहा है कि –

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।

सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥31॥

चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।

आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥32॥

उद्घात्य(त)कः कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा ।

प्रवर्तकावलगिते पञ्च प्रस्तावनाभिदाः ॥33॥

जहाँ नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ अपने कार्य के विषय में चित्र-विचित्र वाक्यों से इस प्रकार बातचीत करें, जिससे प्रस्तुत कथा की सूचना भी प्राप्त हो जाती है, आमुख कहते हैं और उस आमुख का नाम ही प्रस्तावना है। प्रस्तावना के पाँच भेद होते हैं— 1. उद्घातक, 2. कथोद्घात, 3. प्रयोगातिशय, 4. प्रवर्तक और 5. अवलगित।

#### 1. उद्घातक का लक्षण –

पदानि त्वगतार्थानि तदर्थगतये नराः ।

योजयन्ति पदैरन्यैः स उद्घात्यक उच्यते ॥34॥

यथा मुद्राराक्षसे सूत्रधारः –

‘क्रूरग्रहः सकेतुश्चन्द्रमसम्पूर्णमण्डलमिदानीम् ।

अभिभवितुमिच्छति बलात्’–

इत्यन्तरम्– (नेपथ्ये)

आः, क एष मयि जीवति चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छति । इति ।

अत्रान्यार्थवन्त्यपि पदानि हृदयस्थार्थागत्या अर्थान्तरे सङ्क्रमय्य पात्रप्रवेशः ।

अप्रतीतार्थक (अनिश्चित अर्थ वाले) पदों के अर्थ की प्रतीति कराने के लिए जहाँ अन्य अतिरिक्त पदों को जोड़ दिया जाता है, उसे ‘उद्घात्यक’ कहा जाता है ।

उदाहरण– मुद्राराक्षस नाटक में सूत्रधार के द्वारा नटी से यह कहा जाना कि ‘क्रूरग्रहः सकेतुश्चन्द्रमसम्पूर्णमण्डलमिदानीम् अभिभवितुमिच्छति बलात्’ अर्थात् केतु के साथ क्रूरग्रह राहु पूर्णमण्डल चन्द्र को अभी बल पूर्वक ग्रस्त करना चाहता है– इस वाक्य के कहने के पश्चात् ही (कृटिल बुद्धिवाला मलयकेतु सहित राक्षस अभी तत्काल राज्य प्राप्त होने से मजबूत नहीं बने चन्द्रगुप्त को पराजित करना चाहता है । चाणक्य ने ऐसा समझ लिया) नेपथ्य से चाणक्य के द्वारा यह आवाज आती है कि–‘आः क एष मयि जीवति चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छति’ अर्थात् अरे, कौन है जो मेरे रहते चन्द्रगुप्त को पराजित करना चाहता है? अब इस प्रसंग में वक्ता का अभिप्राय चन्द्र का प्रयोग करके चन्द्रमा से है किन्तु चाणक्य ने इसे चन्द्रगुप्त के पक्ष में समझकर अन्य वाक्य कहकर अन्य वाक्यार्थ की प्रतीति करा दी है । अतः यहाँ प्रस्तावना का उद्घात्यक नामक अंग है ।

2. कथोद्घात का लक्षण –

सूत्रधारस्य वाक्यं वा समादायार्थमस्य वा ।

भवेत्पात्रप्रवेशश्चेत्कथोद्घातः स उच्यते ॥35॥

जहाँ सूत्रधार का वाक्य या वाक्यार्थ लेकर कोई पात्र प्रवेश करे उसे कथोद्घात कहा जाता है । यह कथोद्घात दो प्रकार का होता है– क. वाक्य को कहते हुए पात्र का आना, तथा ख. वाक्य के अर्थ को बताते हुए पात्र का आना ।

क. वाक्य को कहते हुए पात्र का प्रवेश –

रत्नावली नाटिका में सूत्रधार के द्वारा निम्नलिखित वाक्य कहते हुए प्रवेश करना कथोद्घात का प्रथम प्रकार है । जैसा कि कहा गया है –

वाक्यं यथा रत्नावल्याम्–

द्वीपदन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात् ।

आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥

सूत्रधारेण पठिते— (नेपथ्ये) साधु भरतपुत्र! साधु! एवमेतत् । कः सन्देहः? द्वीपादन्यस्मादपि—  
इत्यादि पठित्वा यौगन्धरायणस्य प्रवेशः ।

यदि प्रारब्ध अनुकूल हो तो वह दूसरे द्वीप से, समुद्र के मध्य से और दिशाओं के अन्त से भी वस्तुओं को लाकर उपस्थित कर देता है ।

वाक्य को लेकर पात्रप्रवेश रूप कथोद्घात का उदाहरण जैसे रत्नावली में— 'द्वीपादन्यस्मादपि' इत्यादि सूत्रधार के कहने पर (नेपथ्य से) 'यह ऐसा ही है । इसमें क्या सन्देह है?' बोलते हुए 'द्वीपादन्यस्मादपि' पुनः बोलते हुए यौगन्धरायण प्रवेश करता है ।

ख. वाक्य के अर्थ को बताते हुए पात्र का प्रवेश —

वेणीसंहार नाटक में सूत्रधार के द्वारा मंगल पाठ पढ़ा ही जा रहा था कि उसके अर्थ के लिए प्रत्यर्थ को बताते हुए भीमसेन का प्रवेश करना कथोद्घात का दूसरा प्रकार है । जैसा कि कहा गया है—

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन ।

रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः ॥

इति सूत्रधारेण पठितस्य वाक्यस्यार्थं गृहीत्वा— (नेपथ्ये) आः दुरात्मन्! वृथा मंगलपाठकः! कथं स्वस्था भवन्तु मयि जीवति धार्तराष्ट्राः?' ततः सूत्रधारनिष्क्रान्तौ भीमसेनस्य प्रवेशः ।

शत्रुओं के शान्त हो जाने से वैर की अग्नि के शान्त होने पर कृष्ण के साथ पाण्डव प्रसन्न हों । वे कौरव अपने भृत्यों के साथ स्वस्थ हों, जिनके अधीन सारी पृथ्वी अनुरागयुक्त है और जिनके प्रति कलहभाव मिट चुका है ।

सूत्रधार द्वारा पठित इस वाक्य के अर्थ को लेकर (नेपथ्य में) 'अरे नीच! व्यर्थ के मंगलपाठ को पढ़ने वाले! मेरे जीवित रहते हुए कौरव कैसे स्वस्थ हो सकते हैं?' इसके पश्चात् सूत्रधार के रंगमंच से निकल जाने पर भीमसेन का प्रवेश होता है । यह प्रस्तावना का कथोद्घात नामक भेद है ।

3. प्रयोगातिशय —

यदि प्रयोग एकस्मिन्नयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।

तेन पात्रप्रवेशश्चेत्प्रयोगातिशयस्तदा ॥36॥

यथा कुन्दमालायाम्— (नेपथ्ये) इत इत इतोऽवतरत्वार्या ।

सूत्रधारः – कोऽयं खल्वार्याह्वानेन साहायकमपि मे सम्पादयति । (विलोग्य) कष्टमतिकरुणं वर्तते ।

यदि एक ही प्रयोग का प्रारम्भ हो जाये और उसके द्वारा पात्र का प्रवेश हो तो उसे 'प्रयोगातिशय' कहा जाता है। कहने का भाव है कि जहाँ सूत्रधार की योजना के अनुसार 'यह मैं हूँ' ऐसा कहकर पात्र का प्रवेश होता है उसे प्रयोगातिशय कहते हैं।

दिङ्नाग के कुन्दमाल में 'इत इतोऽवतरत्वार्या' अर्थात् इधर से आईये आर्य, इधर से ऐसा सुनकर सूत्रधार के द्वारा यह कहा जाना कि 'कोऽयम्' अर्थात् यह कौन हैं— कहना और पुनः देखकर कि कष्ट है यह अत्यन्त करुण दृश्य है—

लङ्केश्वरस्य भवने सुचिरं स्थितेति रामेण लोकपरिवादभयाकुलेन ।

निर्वासितां जनपदादपि गर्भगुर्वी सीतां वनाय परिकर्षति लक्ष्मणोऽयम् ॥

लंकापति रावण के भवन में अधिक समय तक स्थित रहने के कारण हुए लोक प्रवाद के भय से व्याकुल राम द्वारा गर्भवती सीता को जनपद से त्याग दिया गया है और सीता को वन में ले जाने के लिए लक्ष्मण तत्पर हैं।

अत्र नृत्यप्रयोगार्थं स्वभार्याह्वानमिच्छता सूत्रधारेण 'सीतां वनाय परिकर्षति लक्ष्मणोऽयम्' इति सीतालक्ष्मणयोः प्रवेशं सूचयित्वा निष्क्रान्तेन स्वप्रयोगमतिशयान एव प्रयोगः प्रयोजितः ।

यहाँ पर नृत्यप्रयोग के लिए अपनी पत्नी नटी को बुलाने के लिए इच्छुक सूत्रधार कहता है 'यह लक्ष्मण सीता को वन ले जा रहे हैं' यह कहकर सीता और लक्ष्मण के प्रवेश की सूचना देकर स्वयं रंगमंच से निकलकर अपने नृत्यविषयक प्रयोग का अतिशय (अतिक्रमण) कर दिया। अतः यहाँ प्रयोगातिशय नामक प्रस्तावना का भेद है।

#### 4. प्रवर्तक –

कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत् ।

तदाश्रयश्च पात्रस्य प्रवेशस्तत्प्रवर्तकम् ॥37 ॥

जहाँ सूत्रधार उपस्थित समय का वर्णन करे और उसी के आश्रय से पात्र का प्रवेश हो उसे 'प्रवर्तक' कहा जाता है। यथा—

आसादितप्रकटनिर्मलचन्द्रहासः प्राप्तः शरत्समय एष विशुद्धकान्तिः ।

उत्खाय गाढतमसं घनकालमुग्रं रामो दशास्यमिव सम्भृतबन्धुजीवः ॥

दिङ्नाग के कुन्दमाल में ही सूत्रधार द्वारा उस समय पर चल रही शरद् ऋतु का वर्णन करते हुए कहा गया है—



दृढ़ तमोगुण वाले भयानक एवं मेघ के समान श्याम वर्ण वाले रावण को मारकर सुग्रीव, विभीषण आदि बन्धुजनों के जीवन को सुरक्षित करने वाले और प्रकाश रूप निर्मल खड्ग को प्राप्त करने वाले विशुद्ध कान्ति से युक्त राम के समान गहन अन्धकार वाले मेघसमय को ध्वस्त कर बन्धुजीव आदि पुष्पों की वृद्धि करने वाला तथा प्रकाशस्वरूप एवं स्वच्छ चन्द्ररूप हास्य (विकास) को प्राप्त करने वाला तथा विशुद्ध कान्ति से युक्त यह शरद् ऋतु का समय प्राप्त हुआ।

इत्यादि। ('ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो रामः'।)

इसके पश्चात् राम का प्रवेश होता है। इस प्रकार समय के वर्णन के आश्रय से राम का प्रवेश हुआ इसलिए यह 'प्रवर्तक' कहा जाता है।

5. अवलगित –

यत्रैकत्र समावेशात्कार्यमन्यत्रसाध्यते।

प्रयोगे खलु तज्ज्ञेयं नाम्नावलगितं बुधैः।।38।।

जहाँ एक प्रयोग में सादृश्यादि के द्वारा समावेश करके किसी पात्र की सूचना (अन्यकार्य) सिद्ध किया जाये उसे 'अवलगित' कहा जाता है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में राजा दुष्यन्त के द्वारा सारङ्ग गीत को सुनते हुए और सारङ्ग का पीछा करते हुए कण्व के आश्रम में पहुँच जाना अवलगित को सिद्ध करता है। जैसा कि कहा गया है—

यथा— शाकुन्तले –

सूत्रधारो नटीं प्रति।

तवास्मि गीतरागेण हरिणा प्रसभं हतः।

एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा।।

इत्यादि। ततो राज्ञः प्रवेशः।

इस प्रकार नाटक में प्रस्तावना के अंगों को प्रसंगवश प्रयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त वीथ्यंगानि एवं नखकुट्ट नामक प्रस्तावना का भी भेद माना गया है।

अत्र आमुखे। उद्घात्य(त)कावलगितयोरितराणि वीथ्यंगानि वक्ष्यमाणानि।

नखकुट्टस्तु—

नेपथ्योक्तं श्रुतं यत्र त्वाकाशवचनं तथा।।39।।

समाश्रित्यापि कर्तव्यमामुखं नाटकादिषु।

एषामामुखभेदानामेकं कश्चित्प्रयोजयेत् ॥40॥

तेनार्थमथ पात्रं वा समाक्षिप्यैव सूत्रधृक्।

प्रस्तावनान्ते निर्गच्छेत्ततो वस्तु प्रयोजयेत् ॥41॥

नेपथ्यवचन और आकाशभाषित वाक्य सुनकर उनका आश्रय लेकर नाटक आदि में प्रस्तावना करनी चाहिए। नखकुट्ट तो अप्रविष्टपात्रसूचित पात्र प्रवेश वाला होता है। इसको नाटकों में अपनाया जा सकता है।

इस प्रकार प्रस्तावना के भेदों में से किसी भेद का प्रयोग करके सूत्रधार प्रस्तावना के अन्त में रंगभूमि से निकल जाये तब नाटकीय वस्तु का अभिनय प्रारम्भ करें।

### 12.2.3 इतिवृत्त

नाटक की कथावस्तु को इतिवृत्त कहा जाता है। यह इतिवृत्त दो प्रकार का होता है—

1. आधिकारिक, 2. प्रासङ्गिक। आचार्य विश्वनाथ ने भी कहा है —

इदं पुनर्वस्तु बुधैर्द्विविधं परिकल्प्यते।

आधिकारिकमेकं स्यात्प्रासङ्गिकमथापरम् ॥42॥

1. आधिकारिक — नाटक आदि का जो इतिवृत्त दूर तक जाता है और कथावस्तु का मूलाधार होता है वह इतिवृत्त आधिकारिक कहलाता है। जैसा कि आचार्य विश्वनाथ ने कहा है—

अधिकारः फले स्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।

तस्येतिवृत्तं कविभिराधिकारिकमुच्यते ॥43॥

फले प्रधान फले। यथा बालरामायणे रामचरितम्।

अर्थात् अधिकार का अर्थ होता है प्रधान फल का स्वामित्व और उस स्वामित्व को जो प्राप्त करता है वह उस फल का स्वामी कहलाता है। उस प्रधान फल के स्वामी से नाटक में जो इतिवृत्त जुड़ा होता है उसे कवियों ने आधिकारिक इतिवृत्त कहा है। उदाहरण— रामायण में राम की कथावस्तु आधिकारिक इतिवृत्त है।

2. प्रासङ्गिक — नाटक आदि का जो इतिवृत्त प्रधान कथावस्तु का साधक इतिवृत्त होता है उस इतिवृत्त को प्रासङ्गिक इतिवृत्त कहा जाता है। यह प्रासङ्गिक इतिवृत्त दो प्रकार का होता है— 1. पताका, 2. प्रकरी। पताका इतिवृत्त प्रधान इतिवृत्त के साथ दूर तक चलता है

और प्रकरी इतिवृत्त प्रधान के साथ कुछ दूरी तक ही चलता है। आचार्य विश्वनाथ ने कहा है –

अस्योपकरणार्थं तु प्रासङ्गिकमितीष्यते ।

पताकास्थानकं योज्यं सुविचार्येह वस्तुनि ।।44 ।।

व्यापि प्रासङ्गिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते ।

यथा— रामचरिते सुग्रीवादेः, वेण्यां भीमादेः, शाकुन्तले विदूषकस्य चरितम् ।

अर्थात् इस आधिकारिक इतिवृत्त के उपकार के लिए प्रासङ्गिक इतिवृत्त होता है। इस प्रासङ्गिक इतिवृत्त में जो दूर तक व्याप्त होता है उसे पताका इतिवृत्त कहा जाता है। जैसे – रामचरितसम्बन्धी रूपकों में सुग्रीव आदि का वृत्तान्त, वेणीसंहार में भीमसेन सम्बन्धी वृत्तान्त तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् में विदूषक सम्बन्धी वृत्तान्त ।

पताकानायकस्य स्यान्न स्वकीयं फलान्तरम् ।।67 ।।

गर्भे संधौ विमर्शे वा निर्वाहस्तस्य जायते ।

यथा— सुग्रीवादेः राज्यप्राप्त्यादि । यत्तु मुनिनोक्तम्

‘आ गर्भादा विमर्शाद्वा पताकाविनिवर्तते’ ।। इति । तत्र पताकेति । पताका नायकफलं निर्वहणपर्यन्तमपि पताकायाः प्रवृत्तिदर्शनात् इति व्याख्यातमभिनवगुप्तपादैः ।

पताका नायक का अपना कोई भिन्न फल नहीं होता है, बल्कि वह प्रधान के फल को ही सिद्ध करता है। गर्भ या विमर्श सन्धि के पहले उसका निर्वाह (पताकानायकफल) समाप्त हो जाता है। अभिनवगुप्त ने भी यही माना है। पताका से पताका नायक का फल समझना चाहिए क्योंकि निर्वहण सन्धि तक ही पताका की प्रवृत्ति देखी जाती है इसलिए पताकानायक का फल प्रधान चरित्र के मध्य में ही समाप्त हो जाता है अर्थात् विमर्श सन्धि तक। पताका तो निर्वहण सन्धि तक भी चलती है जैसे— रामचरित में पताकानायक सुग्रीव का राज्यप्राप्ति रूप फल की प्राप्ति, रामचरित के मध्य में ही समाप्त हो जाती है परन्तु सुग्रीव का चरित्र निर्वहण सन्धि यानी सीता की प्राप्ति तक चलता है।

प्रासंगिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता ।।68 ।।

यथा – कुलपत्यङ्के रावणजटायुसंवादः ।

किंरी नायकस्य स्यान्न स्वकीयं फलान्तरम् ।।69 ।।

यथा – जटायोः मोक्षप्राप्ति ।

प्रासङ्गिक इतिवृत्त में ही जो नायक एक देश में ही स्थित रहता है (अर्थात् कुछ देर तक ही चलने वाला चरित्र) प्रकरी नायक कहा जाता है, जैसे— कुलपत्यक में रावण का जटायु से संवाद। प्रकरी नायक का भी अपना कोई फल नहीं होता है अपितु वह प्रधान नायक की

फल प्राप्ति में ही सहायक होता है। भले ही उसे आनुषंगिक फल की प्राप्ति हो, जैसे – जटायु की मोक्षप्राप्ति।

### 12.2.4 जनान्तिक

नाट्य की दृष्टि से कथावस्तु के तीन भेद हैं— 1. सर्वश्राव्य (जो सभी पात्रों के द्वारा सुनने योग्य हो), 2. नियतश्राव्य (जो कुछ निश्चित पात्रों के द्वारा ही सुनने योग्य हो), तथा 3. अश्राव्य (जो किसी के भी सुनने योग्य न हो। उसे नाटक में स्वगत या आत्मगत कहा जाता है यानी मन में कहा जाता है)। इन तीनों कथावस्तुओं में नियतश्राव्य कथावस्तु के दो भेद होते हैं— 1. जनान्तिक, 2. अपवारित। नियतश्राव्य के प्रथम भेद जनान्तिक में किसी बात को किसी विशेष व्यक्ति आदि से छुपाने के लिए हाथ की एक विशेष मुद्रा को बनाया जाता है। इसमें केवल दो व्यक्तियों के बीच संवाद होता है और यह संवाद सभा में सभी के मध्य ही होता है। आचार्य विश्वनाथ ने जनान्तिक का लक्षण देते हुए कहा है –

त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।

अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात्तज्जनान्ते जनान्तिकम्॥139॥

यः कश्चिदर्थो यस्माद् गोपनीयस्तस्यान्तरत ऊर्ध्वं सर्वाङ्गुलिनामितानामिकं त्रिपताकलक्षणं करं कृत्वान्येन सह यन्मन्त्र्यते तज्जनान्तिकम्।

तीन अंगुलियों को ऊपर की ओर उठाये हुए हाथ से दूसरे से छिपाकर कथा के बीच में जो बात किसी व्यक्ति विशेष से ही कही जाती है, उसे जनान्तिक कहते हैं। रंगमंच पर विद्यमान अन्य पात्र उस बात को न सुन सकें।

जो कोई अर्थ या बात जिससे छिपाना है उसके बीच में सभी अंगुलियों में से अनामिका अंगुलि को झुकाकर दूसरे के साथ जो बातचीत की जाती है वह जनान्तिक कहलाता है।

यथा –

प्रियंवदा – (जनान्तिकम्) अनसूये, को नु खल्वेष चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन् प्रभाववानिव लक्ष्यते।

प्रियंवदा – (हाथ की ओट में) अनसूया, यह सुन्दर और गम्भीर आकृतिवाला कौन व्यक्ति है, जो मधुर और प्रिय वार्तालाप करता हुआ प्रभावशाली सा प्रतीत हो रहा है।

### 12.2.5 अपवारित

अपवारित भी नाटक की कथावस्तु के नियतश्राव्य का दूसरा भेद है। इसमें किसी बात को किसी एक व्यक्ति से छिपाकर एक ओर मुख करके दूसरे पात्र को जो रहस्य प्रकाशित (उद्घाटित) किया जाता है उसे अपवारित कहा जाता है जैसा कि आचार्य विश्वनाथ ने अपवारित का लक्षण बताते हुए कहा है –

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्तद्भवेदपवारितम् ।

रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते ॥138॥

परावृत्यान्यस्य रहस्यकथनमपवारितम् । शेषं स्पष्टम् ।

अर्थात् दूसरी ओर मुड़कर दूसरे पात्र को रहस्य बताया जाये उसे अपवारित कहते हैं ।

यथा — अभिज्ञानशाकुन्तलम् पंचम अंक में शकुन्तला अपवार्य ही कहती है—

शकुन्तला — (अपवार्य) आर्यस्य परिणय एव सन्देहः । कुतः इदानीं मे दूराधिरोहिण्याशा?

(एक ओर मुँह करके) महाराज को विवाह में ही सन्देह है अब मेरी महत्वाकांक्षा कहाँ?

### 12.2.6 सूत्रधार

सूत्रधार नाटक का संचालक होता है और नाटक की सम्पूर्ण कथावस्तु सूत्रधार के निर्देश से ही आगे बढ़ती है । यह रंगमंच का अधिष्ठाता होता है तथा नाटकीय पात्रों को आवश्यक निर्देश देता है । यह नाटक में नान्दी के पश्चात् प्रवेश करता है इसीलिए बहुधा नाटकों में यह देखने को मिलता है कि 'ततः प्रविशति नान्द्यन्ते सूत्रधारः' सूत्रधार का अर्थ होता है—'सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयति वा सूत्रनाट्योपकरणादिकं धारयति इति सूत्रधारः' ।

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम् ।

रंगदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरितः ॥

अर्थात् नाटक के सूत्र या प्रयोग आदि उपकरणों को जो धारण करता है उसे सूत्रधार कहा जाता है तथा रंगमंच के अधिष्ठातृ देव की पूजा करता है । नाटक आदि में सूत्रधार के दो कार्य होते हैं— 1. अभिनय प्रयोग की सूचना देना, 2. नाटक आदि की स्थापना करना ।

यथा —

सूत्रधारः — (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये, यदि नेपथ्यविधानमवसितम्, इतस्तावदागम्यताम् ।  
..... आर्ये, कथयामि ते भूतार्थम् ।

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।

बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥

आचार्य विश्वनाथ ने सूत्रधार को नाटक में केवल पूर्वरंग तक ही उपस्थित बताया है और यह भी बताया है सूत्रधार के चले जाने पर उस सूत्रधार के समान वेशभूषा वाला व्यक्ति पुनः नाट्यशाला में प्रवेश करता है और आगे की प्रक्रिया को पूरा करता है । जैसा कि साहित्यदर्पण में कहा है—

पूर्वरङ्गं विधायैव सूत्रधारो निवर्तते ।

प्रविश्य स्थापकस्तद्वत्काव्यमास्थापयेत्ततः ।।26 ।।

दिव्यमर्त्ये स तद्रूपो मिश्रमन्यतरस्तयोः ।

सूचयेद्वस्तु बीजं वा मुखं पात्रमथापि वा ।।27 ।।

अर्थात् पूर्वरंग को विधिपूर्वक सम्पन्न करने के पश्चात् सूत्रधार चला जाता है। उसके बाद उसी के समान वेष वाला स्थापक प्रवेश करता है और वह नाटकादि उस वस्तु की स्थापना करता है जिस वस्तु का वर्णन किया जा रहा है यदि वह वस्तु दिव्य है तो वह देवता के रूप को धारण करके तथा यदि मृत्युलोक की वस्तु है तो वह मनुष्य के रूप को धारण करके और यदि मिश्र हो तो दोनों में से किसी एक रूप को धारण करके काव्य की वस्तु, बीज, मुख और पात्र में से किसी एक की सूचना देता हुआ रंगशाला में उपस्थित होता है।

काव्यार्थस्य स्थापनात्स्थापकः । तद्वदिति सूत्रधारसदृशगुणाकारः । इदानीं पूर्वरङ्गस्य सम्यक्प्रयोगाभावादेक एव सूत्रधारः सर्वं प्रयोजयतीति व्यवहारः । स स्थापको दिव्यं वस्तु दिव्यो भूत्वा, मर्त्यं मर्त्यो भूत्वा, मिश्रं च दिव्यमर्त्ययोरन्यतरो भूत्वा सूचयेत् ।

वस्तु इतिवृत्तम्, यथोदात्तराघवे—

रामो मूर्ध्नि निधाय काननमगान्मालामिवाज्ञां गुरो—

स्तद्भक्त्या भरतेन राज्यमखिलं मात्रा सहैवोज्जितम् ।

तौ सुग्रीवविभीषणावनुगतौ नीतौ परामुन्नतिं—

प्रोत्सिक्ता दशकन्धरप्रभृतयो ध्वस्ताः समस्ता द्विषः ।।

काव्यार्थ की स्थापना करने के कारण वह स्थापक कहलाता है। 'तद्वत्' का अभिप्राय सूत्रधार के समान गुण एवं आकार वाला है। आज पूर्वरंग के सम्यक् प्रयोग का अभाव होने से एक सूत्रधार ही सभी कार्य सम्पादित करता है। स्थापना का कार्य भी करता है। इस प्रकार व्यवहार है। वह स्थापक दिव्य वस्तु हो तो दिव्य रूप धारणकर, मर्त्यलोकीय वस्तु हो तो मर्त्य रूप होकर तथा मिश्र वस्तु हो तो दिव्य और मर्त्य में से किसी एक रूप का आश्रय लेकर सूचित करे। वस्तु से तात्पर्य इतिवृत्त है। इतिवृत्त की सूचना जैसे — उदात्तराघव में वर्णित है— श्रीरामचन्द्रजी पिता की आज्ञा को माला के समान शिर में स्वीकार कर वनवास के लिए चले गये। उनकी भक्ति में विभोर होकर भरत ने माता कैकेयी के साथ-साथ सम्पूर्ण राज्य का ही त्याग कर दिया। उनके अनुयायी सुग्रीव एवं विभीषण राम का साथ देने के कारण अत्यन्त उन्नति की पराकाष्ठा को प्राप्त हो गये। घमण्ड से चूर रावण आदि सभी शत्रुओं का सर्वनाश हो गया।

बीजं यथा रत्नावल्याम् –

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात् ।

आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥

अत्र हि समुद्रे प्रवहणभङ्गमग्नोत्थिताया रत्नावल्या अनुकूलदैवलालितो वत्सराजगृहप्रवेशो यौगन्धरायणव्यापारमारभ्य रत्नावलीप्राप्तौ बीजम् ।

बीज की सूचना जैसे रत्नावली में वर्णित है—

अनुकूल भाग्य अभिलषित पदार्थ को दूसरे द्वीप से, समुद्र के बीच से और दिग्दिगन्त से भी ले आकर अचानक उपस्थित कर देता है। यहाँ पर समुद्र में यान के टूट जाने के कारण डूबने पर भी बचकर निकल जाने वाली रत्नावली का अनुकूल भाग्य द्वारा ललित वत्सराज के महल में प्रवेश यौगन्धरायण के व्यापार को प्रारम्भ कर रत्नावली की प्राप्ति में बीज है।

मुखं श्लेषादिना प्रस्तुतवृत्तान्तप्रतिपादको वाग्विशेषः । यथा –

आसादितप्रकटनिर्मलचन्द्रहासः प्राप्तः शरत्समय एष विशुद्धकान्तिः ।

उत्खाय गाढतमसं घनकालमुग्रं रामो दशास्यमिव सम्भृतबन्धुजीवः ॥

यहाँ पर मुख का अभिप्राय श्लेष, समासोक्ति, अर्थान्तरन्यास आदि से प्रस्तुत वृत्तान्त का प्रतिपादक वचन विशेष है जैसे—

दृढ़ तमोगुण वाले भयानक एवं मेघ के समान श्याम वर्ण वाले रावण को मारकर सुग्रीव, विभीषण आदि बन्धुजनों के जीवन को सुरक्षित करने वाले और प्रकाश रूप निर्मल खड्ग को प्राप्त करने वाले विशुद्ध कान्ति से युक्त राम के समान गहन अन्धकार वाले मेघसमय को ध्वस्त कर बन्धुजीव आदि पुष्पों की वृद्धि करने वाला तथा प्रकाशस्वरूप एवं स्वच्छ चन्द्ररूप हास्य (विकास) को प्राप्त करने वाला तथा विशुद्ध कान्ति से युक्त यह शरद् ऋतु का समय प्राप्त हुआ।

पात्रं यथा शाकुन्तले –

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः ।

एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गोणातिरंहसा ॥

पात्र का संसूचन जैसे शाकुन्तलम् में –

आपके मनोहारी संगीत-माधुर्य से दूर तक ले जाने वाले अतिवेगशाली मृग से राजा दुष्यन्त के समान मैं बरबस खींचा गया हूँ। यहाँ पात्र संसूचित है।

### 12.2.7 विदूषक

नाटक या काव्य में विदूषक नाटक या काव्य को गति प्रदान करता है और उसे दर्शकों के मनोरंजनात्मक रूप में ढालने का प्रयास करता है। आचार्य विश्वनाथ ने विट, चेट और विदूषक को कुछ कमोबेश गुणों के आधार पर एक ही श्रेणी में रखा है। उन्होंने विदूषक का लक्षण करते हुए कहा है कि—

कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।

हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ॥3.42॥

स्वकर्म हास्यादि।

अर्थात् किसी फूल अथवा वसन्तादि पर जिसका नाम हो और अपनी क्रिया, शरीर चेष्टा, वेष और भाषा आदि से हँसाने वाला हो, दूसरों को लड़ाने में प्रसन्न रहता हो और अपने मतलब में पूरा ध्यान रखता हो अर्थात् अपने खाने-पीने आदि की बातों को जो कभी न भूलता हो उसे 'विदूषक' कहा जाता है। यह कभी-कभी कथा के विकास में भी उपयोगी होता है। यह राजा का मित्र होता है। यह नायक का सहायक होता है।

उदाहरण — जैसे अभिज्ञानशाकुन्तलम् का विदूषक माढव्य है।

विदूषकः — किं मोदकखादिकायाम्।

इसी प्रकार विदूषक राक्षसों से भयभीत होते हुए ऐसा दर्शाता है कि वह किसी से नहीं डरता।

विदूषकः — न खलु मां रक्षोभीरुकं गणयसि। (वस्तुतः मुझे राक्षसों से भयभीत मत समझ लेना)।

### 12.2.8 कञ्चुकी

कञ्चुकी नाटक का एक वृद्ध ब्राह्मण पात्र होता है। यह विद्वान्, कुशल और नीति-निपुण होता है। नाटक में कञ्चुकी संस्कृत भाषा बोलता है। मूलतः यह अन्तःपुर का सेवक होता है।

अन्तःपुरचरोवृद्धो विप्रोगुणगणान्वितः।

सर्वकार्यार्थं कुशलः काञ्चुकीत्यविधीयते ॥

उदाहरण — अभिज्ञानशाकुन्तलम् का कञ्चुकी वातायन है।

### 12.2.9 पताकास्थानक



जिस नाटकादि में पात्र को तो कुछ अर्थ प्राप्तव्य होता है और किन्हीं कारणों से उसे वह प्राप्त न होकर अन्य की प्राप्ति हो जाये तो ऐसे स्थानों पर पताकास्थानक का विधान किया जाता है। पताकास्थानक के लक्षण को बताते हुए आचार्य विश्वनाथ कहते हैं कि—

पताकास्थानकं योज्यं सुविचार्येह वस्तुनि ।

यत्रार्थं चिन्तितेऽन्यस्मिस्तल्लिंगोऽन्यः प्रयुज्यते ।

आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत् ।।6.44-45।।

अर्थात् पताकास्थानक का प्रयोग बहुत सोच-समझकर करना चाहिए। पताकास्थानक उसे कहते हैं जहाँ प्रयोग करने वाले पात्र को अन्य अर्थ इच्छित हो, किन्तु सादृश्यता आदि के कारण 'आगन्तुक' अर्थात् प्रतीयमान अचिन्तितोपनत पदार्थ के द्वारा कोई दूसरा ही प्रयोग हो जाता है।

आचार्य विश्वनाथ ने पताकास्थानक के चार भेद बताये हैं जिनके लक्षण और उदाहरण इस प्रकार से स्पष्ट हैं—

#### 1. प्रथम पताकास्थानक का लक्षण —

सहसैवार्थसंपत्तिर्गुणवत्युपचारतः ।

पताकास्थानकमिदं प्रथमं परिकीर्तितम् ।।6.46।।

यथा रत्नावल्याम् — 'वासवदत्तेयम्' इति राजा यदा तत्कण्ठपाशं मोचयति तदा तदुक्त्या 'सागरिकेयम्' इति प्रत्यभिज्ञाय 'कथं ? प्रिया मे सागरिका' ?

अलमलमतिमात्रं साहसेनामुना ते

त्वरितमयि! विमुञ्च त्वं लतापाशमेतम् ।

चलितमपि निरोद्धुं जीवितं जीवितेशे!

क्षणमिह मम कण्ठे बाहुपाशं निधेहि ।।

अत्र फलरूपार्थसम्पत्तिः पूर्वापेक्षयोपचारातिशयाद् गुणवत्युत्कृष्टा ।

जहाँ पर उपचार अर्थात् प्रीति के अनुकूल व्यापार होने से सहसा और शीघ्र ही अधिक

गुणयुक्त अर्थसम्पत्ति(उत्कृष्ट फलप्राप्ति) हो वहाँ प्रथम प्रकार का पताकास्थानक होता है।

उदाहरण— रत्नावली नाटिका में वासवदत्ता का रूप धारण करके सागरिका जाती है किन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि रानी वासवदत्ता को मेरी यह सब बात ज्ञात हो गयी है तो वह पाशबन्ध के लिए तैयार हो जाती है किन्तु तत्काल ही राजा वहाँ पहुँचकर उसे पाशबन्ध से

मुक्त करता है और उसकी कण्ठध्वनि से उसे पहचान लेता है और आश्चर्य के साथ वह कहता है कि—‘कथं प्रिया मे सागरिका’ अर्थात् क्या यह मेरी प्रिय सागरिका है? यहाँ फलप्राप्ति रूप अर्थसम्पत्ति है, क्योंकि पहले तो राजा के द्वारा उसे वासवदत्ता समझकर उपचार किया जा रहा था किन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि यह सागरिका है तो राजा को उसके प्राप्तव्य अभीष्ट समागमरूप प्रयोगान्तर की प्राप्ति होती है।

यहाँ फलरूप अर्थसम्पत्ति (सागरिका-प्राप्ति) पहले (वासवदत्ता-प्राप्ति) की अपेक्षा प्रेम की अधिकता से अधिक उत्कृष्ट है। अतः यह प्रथम पताकास्थानक है।

## 2. द्वितीय पताकास्थानक का लक्षण –

वचः सातिशयं शिलष्टं नानाबन्धसमाश्रयम्।

पताकास्थानकमिदं द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥6.47॥

यथा वेण्याम् —‘रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः’। अत्र रक्तादीनां रुधिरशरीरार्थहेतुकश्लेषवशेन बीजार्थप्रतिपादनान्नेतृमङ्गलप्रतिपत्तौ सत्यां द्वितीयं पताकास्थानकम्।

अर्थात् जहाँ अनेक बन्धों में आश्रित अतिशय शिलष्ट(श्लेष युक्त) वचन हों वह दूसरा पताकास्थानक होता है।

उदाहरण— वेणीसंहार नाटक में इस निम्नलिखित श्लोक के दो अर्थ निकलने से शिलष्टपदयुक्त द्वितीय पताकास्थानक यहाँ सिद्ध होता है। जैसा कि कहा गया है—

रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः।

1. जिन्होंने पृथ्वी को अनुरक्त और प्रसाधित कर लिया है और विग्रह जिनका क्षत हो गया है वे कौरव अपने भृत्यों के साथ स्वस्थ हों। 2. जिन्होंने अपने रुधिर से पृथ्वी को रञ्जित कर दिया है और जिनके शरीर क्षत-विक्षत हो गये हैं, ऐसे कौरव स्वस्थ हो जायें। यहाँ रक्तविग्रहादि शिलष्ट पदों का रुधिर और शरीररूप अर्थ के हेतु श्लेष अलंकार से बीजभूत अर्थ (बढ़े हुए भीम के क्रोध से युधिष्ठिर का उत्साह तथा उससे कौरवों का नाश) के प्रतिपादन से नायक के मंगल का ज्ञान होने से यह दूसरा पताकास्थानक हुआ।

## 3. तृतीय पताकास्थानक का लक्षण –

अर्थोपक्षेपकं यत्तु लीनं सविनयं भवेत्।

शिलष्टप्रत्युत्तरोपेतं तृतीयमिदमुच्यते ॥6.48॥

लीनमव्यक्तार्थम्, शिलष्टेन सम्बन्धयोग्येनाभिप्रायान्तरप्रयुक्तेन प्रत्युत्तरेणोपेतम्, सविनयं विशेषनिश्चयप्राप्त्या सहितं सम्पाद्यते यत्तत्तृतीयं पताकास्थानम्।

जहाँ किसी दूसरे अर्थ का उपक्षेपक (सूचन करने वाला), लीन (अव्यक्तार्थक अस्पष्ट) और विनय (विशेष निश्चय) से युक्त वचन हो, जिसमें उत्तर भी श्लिष्टता से संयुक्त हो वह तीसरा पताकास्थानक होता है।

यहाँ लीन का अभिप्राय अस्पष्ट अर्थ से है। श्लिष्टप्रत्युत्तरोपेतम् का अभिप्राय श्लिष्ट से अर्थात् सुसम्बद्ध और दूसरे अभिप्राय से युक्त प्रत्युत्तर से युक्त है। सविनय का आशय— जिसका विशेष निश्चय की प्राप्ति सहित सम्पादन किया जाता है वह तीसरा पताकास्थानक है।

उदाहरण — वेणीसंहार नाटक के द्वितीय अंक में कञ्चुकी के द्वारा यह कहा जाना कि —

कञ्चुकी — देव! भग्नं भग्नम् (महाराज! तोड़ दिया, तोड़ दिया)

राजा — केन? (किसने?)

कञ्चुकी — भीमेन (भीम ने)

राजा — कस्य? (किसका?)

कञ्चुकी — भवतः (आपका)

राजा — आः! किं प्रलपसि? (क्या प्रलाप कर रहे हो?)

कञ्चुकी — (सभयम्) देव! ननु ब्रवीमि भग्नं भीमेन भवतः। (डरकर) महाराज! मैं ठीक कह रहा हूँ। भीम ने आपका तोड़ दिया।

राजा — धिग् वृद्धापसद! कोऽयमद्य ते व्यामोहः? (धिक् अधम वृद्ध! यह तुम्हारा कैसा मोह है?)

कञ्चुकी — देव! न व्यामोहः। सत्यमेव—

भग्नं भीमेन भवतो मरुता रथकेतनम्।

पतितं किङ्किणीकाणबद्धाकन्दमिव क्षितौ।।

अत्र दुर्योधनोरुभंगरूपप्रस्तुतसंक्रान्तमर्थोपक्षेपणम्।

भीम अर्थात् भयंकर वायु ने भग्न आपके रथ का ध्वज किङ्किणीसमूह के शब्द से रोते हुए के समान जमीन पर गिर पड़ा। यहाँ पर दुर्योधन की उरुभंग रूप प्रस्तुत विषय में दूसरे अर्थ का सूचक हुआ है। अतः यहाँ तृतीय श्लिष्टपदयुक्त पताकास्थानक है।

4. चतुर्थ पताकास्थानक का लक्षण —

द्वयर्थो वचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः।

प्रधानार्थान्तराक्षेपी पताकास्थानकं परम्।।6.49।।

जहाँ सुन्दर श्लेषयुक्त द्वयार्थक वचनों का विन्यास हो, जिससे प्रधान अर्थ की सूचना होती है वह चतुर्थ प्रकार का पताकास्थानक होता है।

**उदाहरण** – रत्नावली नाटिका में निम्न श्लोक में लता और कामिनी के माध्यम से द्वयार्थक श्लिष्ट वचनों को निबद्ध किया गया है—

उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा—

दायासं श्वसनोद्गमैरविरलैरातन्वतीमात्मनः।

अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवं

पश्यन्कोपविपाटलद्युति मुखं देव्याः करिष्याम्यहम्॥

मैं आज यहाँ बहुत अधिक संख्या में निकली हुई कलियों से युक्त, पक्ष में— प्रेम मिलन की अत्यन्त उत्कण्ठा से युक्त, फूल के विकास से पीली-पीली कान्ति वाली, पक्ष में— प्रेम विरह से पीले वर्ण वाली, फूल का विकास करने वाली, पक्ष में— अलसायी हुई, निरन्तर पवन के झोंकों से कम्पित होने वाली, पक्षमें— अनवरत विरहवेदना के उद्गम से कामवेदना को प्राप्त करने वाली, मदन वृक्ष में लिपटी हुई, पक्ष में— कामवासना से युक्त नारी के समान इस उद्यानलता को देखता हुआ देवी (वासवदत्ता) के मुख को निश्चय ही क्रोध से लाल वर्ण वाला करूँगा। इसमें सागरिका की प्राप्ति रूप भावी अर्थ की सूचना दी गई है। अतः यह चौथा पताकास्थानक है।

इस तरह ये चारों पताकास्थानक की योजना कहीं नायक के मंगलार्थक और कहीं अमंगलार्थक होकर सभी सन्धियों में प्रयुक्त होते हैं।

#### 12.2.10 आकाशभाषित

आकाशभाषित नाटक की अश्राव्य, सर्वश्राव्य आदि उक्तियों के भेदों में से एक है। आचार्य विश्वनाथ ने इस आकाशभाषित का लक्षण करते हुए कहा है कि नाटक में जहाँ किसी दूसरे पात्र के बिना ही, बिना कही बात को ही सुनने का अभिनय करके यह कहा जाये कि 'किम् ब्रवीषीत्यादि' अर्थात् क्या कहते हो? वहाँ आकाशभाषित होता है। इसके लिए 'आकाश' (आकाश में) भी प्रयुक्त होता है। जैसा कि आचार्य विश्वनाथ ने लक्षण दिया है—

किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते।

श्रुत्वैवानुक्तमप्यर्थं तत्स्यादाकाशभाषितम्।।6.140।।

**उदाहरण** – (आकाशे) राजन्,

सायन्तने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते

वेदिं हुताशनवतीं परितः प्रयस्ताः ।

छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः

सन्ध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम् ॥ अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3.24

यह आकाशवाणी है जिसे सुनकर राजा अयमहमामच्छामि । (इति निष्क्रान्तः ।)

### 12.2.11 भरतवाक्य

नायक, सूत्रधार अथवा नाटकीय पात्रों की ओर से जनता के लिए जो अन्तिम आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक, कल्याणात्मक श्लोक होता है उसे भरतवाक्य कहा जाता है। भरत का अर्थ नट या अभिनेता है। भरतानां वाक्यं भरतवाक्यम् । अथवा भरतवाक्य यह नाम नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि की स्मृति के लिए भी रखा गया है। इस दृष्टि से भरतमुनि द्वारा आदिष्ट आशीर्वादात्मक वाक्य यह अर्थ भी प्राप्त होगा।

आचार्य विश्वनाथ ने भरतवाक्य का लक्षण करते हुए कहा है—

वरदानसम्प्राप्तिः काव्यसंहार इष्यते ।

नृपदेशादिशान्तिस्तु प्रशस्तिरभिधीयते ।।6.114 ।।

अर्थात् वरदान की प्राप्ति का नाम काव्यसंहार है। इसमें प्रशस्ति, राजा और देश आदि की शान्ति भी सम्मिलित है।

उदाहरण — किसी भी नाटक के अन्त में बहुधा यही देखने को मिलता है कि ‘किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि’ अर्थात् यदि भगवन् आप हमारा प्रिय ही करना चाहते हैं तो आप यह शुभ कार्य हमारे लिए करें और हमारा कल्याण करें। जैसा कि प्रभावती नाटक में कहा गया है—

राजानः सुतनिर्विशेषमधुना पश्यन्तु नित्यं प्रजा

जीयासुः सदसद्विवेकपटवः सन्तो गुणग्राहिणः ।

सस्यस्वर्णमृद्धयः समधिकाः सन्तु क्षमामण्डले

भूयादव्यभिचारिणी त्रिजगतो भक्तिश्च नारायणे ।।

राजा पुत्रों के समान प्रजा का पालन करें, गुणों को ग्रहण करने वाले गुणग्राही पुरुष उन्नत हों, स्वामी के लिए धन-धान्य की वृद्धि हो और सब की भक्ति भगवान् नारायण में बढ़े।

इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् का भरतवाक्य प्रसिद्ध है।

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः ।

सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम् ।।

ममापि च क्षपयतु नीललोहितः ।

पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ।।

राजा प्रजा के हित के लिए प्रयत्नशील हों। ज्ञान गरिष्ठ कवियों की वाणी का पूर्ण सत्कार हो। सर्वशक्तिमान् स्वयंभू शिव मेरे पुनर्जन्म को निवृत्त कर दें।

---

### 12.3 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! 'संस्कृत साहित्यशास्त्र एवं साहित्य' के इस पाठ्यक्रम में आप 'साहित्यदर्पण' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ का अध्ययन कर रहे हैं। इस इकाई में आपने नाटक से सम्बन्धित अंगों जैसे नान्दी, प्रस्तावना, इतिवृत्त, जनान्तिक, अपवारित आदि का अध्ययन किया। अध्ययन के क्रम में आपने जाना कि आशीर्वादात्मक वचनों से युक्त देवता, ब्राह्मण, राजा आदि की स्तुति नान्दी कहलाती है। आपने प्रस्तावना को भी उसके पञ्चविध भेदों के साथ विस्तार के साथ समझा। इतिवृत्त के आधिकारिक एवं प्रासंगिक द्विविध भेदों का अध्ययन किया। अध्ययन के इस क्रम में आपने जनान्तिक, अपवारित, सूत्रधार, विदूषक आदि के लक्षणों एवं उदाहरणों का भी अध्ययन किया।

---

### 12.4 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- साहित्यदर्पणम्, व्याख्याकार आचार्य शेषराजशर्मा रेग्मी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2010
- साहित्यदर्पणः, व्याख्याकारः पं. हरेकान्तमिश्रः, चौखम्बा ओरियन्टालिया, दिल्ली, 2017
- साहित्यदर्पणः, व्याख्याकार श्रीशालिग्रामशास्त्रि, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1986।
- साहित्यदर्पण, व्याख्याकार मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः, अक्षयवट प्रकाशन प्रयागराज।
- साहित्यदर्पणः, (मंजू-संस्कृतव्याख्या- हिन्दुनुवादोपेतः) व्याख्याकार लोकमणिदाहालादि- चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, स0 2054
- साहित्यदर्पण-विश्वनाथ, (व्याख्याकार)सत्यव्रतसिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1988
- नाट्यशास्त्रम्, सम्पादक बाबूलाल शुक्ल, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी, 1972
- नाट्यशास्त्र, व्याख्याकार ब्रजमोहन चतुर्वेदी, विद्यानिधि प्रकाशन दिल्ली।
- नाट्यशास्त्रम्, व्याख्याकार डॉ० पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2004
- दशरूपक, व्याख्याकार श्रीनिवास शास्त्री, साहित्यभण्डार मेरठ।

---

### 12.5 अभ्यास प्रश्न

- 1 नान्दी एवं उसके भेदों को स्पष्ट कीजिए।
- 2 भरतवाक्य की उदाहरण सहित विवेचना कीजिए।
- 3 आकाशभाषित पर टिप्पणी लिखिए।
- 4 इतिवृत्त का लक्षण देते हुए उसके भेदों का वर्णन कीजिए।
- 5 विदूषक की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।



ignou  
THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY